विपश्यना

साधकों का
मासिक प्रेरणा पत्र

वार्षिक शुल्क रु. 30/-
आजीवन शुल्क रु. 500/-

बुद्धवर्ष 2560, आषाढ़ पूर्णिमा, 19 जुलाई, 2016 वर्ष 46 अंक 1

For online **Patrika** in various languages, visit: http://www.vridhamma.org/Newsletter_Home.aspx

धम्मवाणी

अत्तना हि कतं पापं, अत्तना संकिलिस्सति।
अत्तना अकतं पापं, अत्तनाव विसुज्झति।
सुद्धी असुद्धि पच्चत्तं, नाञ्ञो अञ्ञं विसोधये॥

– धम्मपद १६५, अत्तवग्गो.

अपने द्वारा किया गया पाप ही अपने को मैला करता है। स्वयं पाप न करे तो आदमी आप ही विशुद्ध बना रहे। शुद्धि-अशुद्धि तो प्रत्येक मनुष्य की अपनी-अपनी ही है। (अपने-अपने ही अच्छे-बुरे कर्मों के परिणामस्वरूप है।) कोई दूसरा भला किसी दूसरे को कैसे शुद्ध कर सकता है? (कैसे मुक्त कर सकता है?)

मन के विकारों से विमुक्ति कैसे हों?

*(पूज्य गुरुदेव श्री सत्यनारायण गोयन्काजी द्वारा पश्चिमी महाराष्ट्र के विख्यात शहर नासिक के **'रमाबाई आंबेडकर गर्ल्स हाई स्कूल'** के प्रांगण में सन १९९८ में दिये गये तीन दिवसीय प्रवचन-शृंखला के **तीसरे दिन के प्रवचन का पहला भाग**)*

नासिक की धर्मभूमि के नागरिको, धर्मप्रेमी सज्जनो, सन्नारियो!

परसों हमने यह जानने की कोशिश की कि धर्म क्या होता है। धर्म के नाम पर न जाने कितनी भ्रांतियां चलती हैं, कितना भ्रम चलता है, और उसके कारण आदमी उलझा रहता है। सारा जीवन इस उलझन में, इस धोखे में बिता देता है कि मैं बड़ा धार्मिक हूं। लेकिन हो सकता है इस बेचारे में धर्म का नामो-निशान भी न हो। फिर भी कितना बड़ा धोखा!

भिन्न-भिन्न परंपराओं के अपने-अपने पर्व-उत्सव, तीज-त्योहार, व्रत-उपवास, कर्म-कांड होते हैं, और अपनी-अपनी अलग-अलग दार्शनिक मान्यतायें होती हैं। इनका धर्म से दूर-परे का भी संबंध नहीं होता। फिर भी उन्हें पूरा करके हम समझ लेते हैं कि हम तो बड़े धार्मिक हैं। लेकिन मानव जाति में जब शुद्ध धर्म जागता है तब लोग समझने लगते हैं कि धर्म तो शुद्ध चित्त के आचरण को कहते हैं। और जब न मेरा चित्त शुद्ध है, न ही मेरे आचरण में चित्त की शुद्धता है तब भाई, मैं धार्मिक कैसे हुआ? केवल ये-ये कर्म-कांड आदि कर लेने मात्र से धार्मिक कैसे हो गया? ऐसी वेश-भूषा पहन लेने से, ये तीज त्योहार मना लेने से, ये पर्व-उत्सव मना लेने से या कोई दार्शनिक मान्यता मान लेने से धार्मिक कैसे हो गया? मेरे मन के विकार तो निकले नहीं न!

जब देखो तब मन में राग, द्वेष, ईर्ष्या, अहंकार जागता है, वासना जागती है, भय जागता है। भिन्न-भिन्न प्रकार के विकार जागे जा रहे हैं और इन विकारों की वजह से मैं अपने मन की समता खोये रहता हूं, मन का संतुलन खोये रहता हूं, मन की शांति खोये रहता हूं, मन का सुख खोये रहता हूं। थोड़ी देर के लिए अपने मन को किसी अन्य बात में लगा करके ऊपर-ऊपर से यह भ्रम पैदा कर लेता हूं कि मुझे शांति है। नहीं भाई, वह सही शांति नहीं है। जब तक विकारों का संग्रह लिए चल रहे हैं, कोई न कोई विकार जागता ही रहेगा, और हमें व्याकुल बनाता ही रहेगा। इससे कोई हीन भावना जगाने की आवश्यकता नहीं है। सच्चाई को स्वीकार करना है कि अभी धार्मिक होने में कमी है। मुझे प्रयत्न करना है कि मैं इन विकारों से कैसे मुक्त होऊं! विकारों से मुक्त हुए बिना मैं धार्मिक नहीं हूं। जितने-जितने विकारों से जितना-जितना मुक्त हुआ, उतना-उतना धार्मिक हुआ। बस, एक ही माप-दंड, दूसरा माप-दंड नहीं। तो धोखा नहीं रहेगा। फिर अपने-अपने समाज के, अपने-अपने संगठन के, अपनी-अपनी परंपरा के जो भी तीज-त्योहार, पर्व-उत्सव हैं, सारे मनायेंगे। ये पारिवारिक और सामाजिक आमोद-प्रमोद के लिए हैं। होने ही चाहिए, बुरी बात नहीं। लेकिन जांचते रहेंगे कि मेरे मन के स्वभाव में कोई फर्क पड़ा कि नहीं। मेरा क्रोध कम हुआ कि नहीं। मेरा द्वेष, मेरी आसक्ति, मेरी वासना, मेरा अहंकार, ममंकार कम हुआ कि नहीं; इसे जांचते रहेंगे।

जितना-जितना कम हुआ उतना-उतना मैं धार्मिक हो गया। दुःखों से मुक्त हो गया, भारत की पुरानी परंपरा में, पुरानी मान्यता में जैसे उस दिन कहा, धर्म क्या है, उसके लक्षण व स्वभाव क्या हैं? धर्म का लक्षण यही है कि अगर धर्म मेरे भीतर आ गया तो अशांति नहीं आ सकती, दुःख आ नहीं सकता, बेचैनी नहीं आ सकती मुझे। यह असंभव बात है कि प्रकाश भी हो जाय और अंधेरा भी साथ-साथ चले। हो ही नहीं सकता। प्रकाश आया कि अंधेरा अपने आप चला जायगा। उसे कहना नहीं पड़ता तू चला जा बाहर। प्रकाश आया तो चला ही जायगा। धर्म जागा तो बेचैनी चली ही जायगी। सारी अशांति, दुःख चले ही जायँगे। एक ही मापदंड है।

जिस दिन अपने आप को इस मापदंड से मापने लगता है, उस दिन अन्य सारे सामाजिक कर्म-कांड करते हुए भी, या न करते हुए भी, एक बड़े काम में लग जाता है कि मुझे अपने मन के विकार दूर करने हैं। और केवल ऊपर-ऊपर वाले मन के विकार नहीं, अंतर्मन की गहराइयों में जो विकारों का इतना बड़ा संग्रह कर रखा है, ऐसा स्वभाव बना लिया है कि भीतर ही भीतर जरा-सी सुखद अनुभूति हुई कि आसक्ति ही आसक्ति, राग ही राग, और जरा भी दुःखद अनुभूति हुई कि द्वेष ही द्वेष, दुर्भावना ही दुर्भावना। चाहे राग जगाता हूं कि आसक्ति, द्वेष जगाता हूं कि दुर्भावना; तत्काल अपने चित्त की समता, चित्त का संतुलन खो देता हूं। और चित्त का संतुलन खोया कि व्याकुल हुआ। यह कुदरत का नियम है। कोई खो कर देखे, कोई जरा विकार जगा कर देखे कि भीतर क्या अनुभव कर रहा हूं? भीतर देखना ही भूल गये। तो क्या देखे?

भीतर देखना सीख जाय तो देखेगा कि विकार जागते ही व्याकुलता जागी, विकार जागते ही दुःख जागा। धर्म तो बहुत दूर है। अब प्रयत्न करेगा कि विकारों से मुक्ति कैसे पाऊं? देखेगा अपने अंतर्मन की गहराइयों में जो एक बंधन बँध गया है, एक स्वभाव शिकंजे की जकड़न में ऐसा गिरफ्त हो गया है कि उसमें से निकल ही नहीं सकता। जरा-सी अनचाही बात हुई कि कितनी चिड़चिड़ाहट, मनचाही बात होने में जरा-सी अड़चन आई कि कितनी चिड़चिड़ाहट। फिर भी अपने को धार्मिक मानता है। क्यों? क्योंकि आज सुबह मैंने अमुक कर्म-कांड पूरा कर लिया, मेरी परंपरागत

वेशभूषा ऐसी बना ली, मैं बड़ा धार्मिक! धर्म के नाम पर इतना बड़ा धोखा, जबकि धर्म का नामो-निशान नहीं है। ये कर्म-कांड कर लिये, पर्व-त्योहार मना लिये, इसलिए धार्मिक हूं। एक और बड़ा खतरा- मैं तो ऐसी दार्शनिकता को मानने वाला और जो ऐसी दार्शनिकता को मानने वाले हैं वे सब धार्मिक, जो नहीं मानते वे बड़े अधार्मिक।

क्या मापदंड बना लिया हमने! कैसे हमने धर्म के क्षेत्र में सोचना ही बंद कर दिया! सही दिशा में चिंतन करना ही बंद कर दिया! कैसा अंधेरा छा गया धर्म के नाम पर! धर्म हो और सुख-शांति न हो, धर्म हो और जब देखो तब व्याकुलता जागे, बेचैनी जागे, तो धर्म नहीं है भाई! धर्म के नाम पर धोखा है। सब के मानस का वही स्वभाव-- विकार जगाता है तो व्याकुल हो जाता है। विकारों से मुक्त होता है तो सुखी हो जाता है। बड़ी शांति महसूस करता है। यह बात सब पर लागू होती है। धर्म सबका होता है। सब के कर्म-कांड, दार्शनिक मान्यता... आदि अलग-अलग रहे, उसका कोई विरोध नहीं, उससे कोई झगड़ा नहीं। लेकिन धर्म कहां? देखें, मुझमें धर्म आया कि नहीं?

रोगी आदमी के लिए सबसे जरूरी बात यह है कि मैं इस रोग से मुक्त कैसे होऊं? रोगी हूं तो बड़ा व्याकुल रहता हूं, बड़ा दुःखी रहता हूं। कोई रास्ता हो, कोई ऐसी औषधि हो जो मुझे इस रोग से मुक्त कर दे। मेरे लिए यही काम की बात। रोग से मुक्त होने के लिए औषधि का सेवन तो करूंगा नहीं, लेकिन जिन-जिन बातों का रोग से दूर परे का भी संबंध नहीं, कोई लेन-देन नहीं, ऐसी अप्रासंगिक (irrelevant) बात को सिर पर चढ़ाये फिरूं और अपने रोग से मुक्त होने के लिए कोई उपाय नहीं करूं! तो भाई, इससे बड़ा दुर्भाग्य क्या होगा?

धर्म की भी खाली चर्चा करके रह जायँ। धर्म की खूब प्रशंसा करके रह जायँ, पर धारण नहीं करें तो बड़े दुर्भाग्य की बात हुई न! एक प्यासा आदमी, प्यास से कंठ सूख रहा है उसका। पास में पानी का कलशा भरा पड़ा है और वह बड़ी प्रशंसा करता है पानी की-- अरे पानी तेरा क्या कहना, तुझे पीते ही प्यास बुझ जाती है, तेरी यह महानता, तेरी वह महानता..., केवल प्रशंसा करेगा उसकी। अरे, उससे बढ़कर अभागा आदमी कौन होगा दुनिया में? भूखा आदमी है, भोजन पास पड़ा है, एक कौर उठा कर नहीं खायगा और प्रशंसा करेगा भोजन की, अरे हमारी परंपरा का भोजन ऐसा, हमारी मान्यता का भोजन ऐसा, लेकिन खायगा नहीं। उससे बढ़कर अभागा कौन होगा?

रोगी आदमी रोग के मारे व्याकुल है, औषधि है, पर औषधि की केवल प्रशंसा करता है, औषधि देने वाले वैद्य की प्रशंसा करता है। अरे, हमारा वैद्य ऐसा, हमारा वैद्य ऐसा, उसने ऐसी औषधि दी, परंतु सेवन नहीं करता। इससे बढ़ कर और दुर्भाग्य क्या होगा?

हर व्यक्ति को सोचना चाहिए, मुझे अपने रोग से बाहर निकलना है। यह जो भवरोग पीछे लग गया, व्याकुलता का रोग पीछे लग गया, बेचैनी का रोग पीछे लग गया, इसके बाहर निकलना है। तो बाहर निकलने के लिए कोई काम करना पड़ेगा और काम यही करेंगे कि मन के मैल को कैसे दूर करें। मन के दृढ़मूल हुए स्वभाव को कैसे पलटें। ऐसा स्वभाव जो केवल विकार ही पैदा करना जानता है, विकार पर विकार, विकार पर विकार, यह स्वभाव हो गया, उस स्वभाव से कैसे मुक्ति पायें। और सारी बातें गौण, उनका महत्त्व नहीं। वह एक समाज में रहता है, इसलिए समाज का साथ देना है, परिवार का साथ देना है, आमोद-प्रमोद का एक प्रसंग है, बड़ी अच्छी बात, वह सब करते हैं। लेकिन मुख्य बात यह कि अपने विकारों से कैसे मुक्त होवें!

बस, धारण करने का कम से कम एक संकल्प तो याद आया। धोखा तो दूर हुआ कि ये कर्म-कांड आदि करके मैं बड़ा धार्मिक हूं। मन पर से यह तो निकले कि मैं धार्मिक नहीं हूं। मेरे विकार जिस दिन से निकलने शुरू हो जायँगे, जितने-जितने निकलेंगे, उतना-उतना धार्मिक। एक ही व्यक्ति सुबह से शाम तक न जाने कितनी बार धार्मिक होगा, न जाने कितनी बार अधार्मिक होगा। जब-जब विकार जागेंगे, अधार्मिक है, और जब-जब विकार दूर हुए, तब-तब धार्मिक है। कम से कम विकार जागे तो कम से कम अधार्मिक है। विकार बिल्कुल नहीं जागे तो अधार्मिक बिल्कुल नहीं, धार्मिक ही धार्मिक।

इसी मापदंड से मापते रहेंगे कि मेरा रोग दूर हो रहा है कि नहीं? कितना हो रहा है? यह रोग जड़ों से बाहर निकल रहा है कि नहीं? बस, मुक्ति का रास्ता मिल गया। विकारों से मुक्ति का रास्ता माने दुःख से मुक्ति का रास्ता। तब सारे भवदुःखों से मुक्त होता चला जायगा।

कैसे निकालें विकारों को? मन में मैल है तो कैसे निकालें उसे? मैल तो मन में है, और बाहर जाकर यह कर्म-कांड कर लिया, वह कर्म-कांड कर लिया और समझ लिया मेरा मैल निकल गया। अरे, मैल तो तेरे भीतर है! भीतर की यात्रा कर, भीतर जा कर देख। देख, कैसे मैल जागता है, कैसे विकार जागता है, कैसे उसका संवर्धन होता है? जानोगे नहीं तो दूर कैसे करोगे? किसी ने कहा इस पास के कमरे में बहुत गंदगी है, इसकी सफाई करनी है। हां, सफाई तो करनी है पर उस कमरे में नहीं जाऊंगा, बाहर-बाहर और दस काम करते फिरूंगा, पर उस कमरे की सफाई छोड़ दी और चाहता हूं कि उसकी सफाई हो जाय। अरे, कैसे हो जायगी?

वहां पहुँचना होगा न भाई! तो अंतर्मन की गहराइयों में जहां विकारों का संग्रह लिये चल रहे हैं, विकारों की एक बुरी आदत, एक बुरा स्वभाव लिये चल रहे हैं, वहां पहुँचना होगा और वहां उसे पलटने का अभ्यास करना पड़ेगा, श्रम करना पड़ेगा, मेहनत करनी पड़ेगी। किसी की कृपा से नहीं होता भाई! हजार आशा लिये बैठे रहें-- हम पर इसकी कृपा हो जायगी, वह तो हमें मुक्त कर ही देगा, दुःखों से पार कर ही देगा। सारी जिंदगी ऐसे करते चले जायँगे, विकारों को दूर करने का काम नहीं करेंगे, और उम्मीद करेंगे कि कोई दूसरा कर देगा। जरा सोच कर देखें! मुश्किल यह हो गयी कि सोचना बंद कर दिया। धर्म के नाम पर बुद्धि को एक ओर रख दिया। मजहब में अक्ल को दखल नहीं। अरे, बिना अक्ल के मजहब क्या हुआ भाई! जो बात तर्क-संगत नहीं, बुद्धि-संगत नहीं, युक्ति-संगत नहीं उसे धर्म कैसे मान लें? तो धर्म की बात यह कि बुद्धि से समझें कि मुझे विकार दूर करने हैं, फिर यह समझें कि विकार कैसे उत्पन्न होते हैं? कैसे उनका संवर्धन होता है? विकार कहां है? वहां तक पहुँचूं तो ठीक रास्ता मिल गया। अन्यथा फिर धोखा ही धोखा। इस धोखे से बाहर आना है।

भारत की यह बहुत पुरानी परंपरा, हजारों वर्ष पुरानी परंपरा इसी काम के लिए जागती है, सदियों तक चलती है, लोग इसका लाभ लेते हैं। लेकिन फिर ऐसे पागल लोगों के हाथ में पड़ जाती है, जो इसके साथ कोई कर्म-कांड जोड़ देंगे, कोई दार्शनिक मान्यता जोड़ देंगे, कोई व्रत-उपवास जोड़ देंगे-- कहेंगे अच्छा है मन को भी साफ करो, लेकिन यह भी करो, यह भी करो, यह भी करो, तो वह-वह प्रमुख हो गया क्योंकि आसान है। कर्म-कांड कर लेना बड़ा आसान है, वेश-भूषा बदल लेनी बड़ा आसान है, किसी मान्यता को मान लेना बहुत आसान है, जबकि मन को अंतर्मुखी करके निर्मल करने का काम बड़ा कठिन। यों धीरे-धीरे यह मन को निर्मल करने का काम लुप्त होते चला जाता है और ऊपर-ऊपर की बातें ही रह जाती हैं।

यह महाराष्ट्र प्रदेश, इस विद्या में भारत का ही नहीं, एक समय ऐसा था जब यह सारे विश्व का बहुत बड़ा केंद्र रहा। घर-घर में यह विद्या फैली और लोगों को इसका बहुत बड़ा लाभ मिला। जैसे कल बताया कि कैसे पहले-पहल यह विद्या २६०० वर्ष पहले इस देश में आयी, फिर इस प्रदेश में आयी और फैलने लगी। कोई ३०० वर्ष के बाद सम्राट अशोक ने विपश्यना के कुछ आचार्यों को चारों ओर भेजा, भारत में भी, भारत के बाहर भी। अरे, इतनी कल्याणकारी विद्या, इससे मेरा इतना कल्याण हुआ, मेरी प्रजा का इतना कल्याण हुआ। अरे, सबका कल्याण होना चाहिए। बांटो, यह विद्या सबको बांटो!

इस प्रकार विपश्यना के दो आचार्य 'महाधर्मरक्षित' और 'महारक्षित' भारत के इस पश्चिमी तट पर आये और इन दोनों ने बहुत बड़ा काम किया। केवल इस प्रदेश के लिए ही नहीं, इसके बाहर भी, विदेशों में भी विपश्यना कैसे जाय! उस समय इस तट पर बड़े

महत्त्वपूर्ण बंदरगाह थे। नालासोपारा में सुपारक (सोपारा) नाम का बहुत बड़ा बंदरगाह था, जो हजारों वर्ष पुराना अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का बहुत पुराना केन्द्र था जैसे आज बम्बई है। ऐसे ही कच्छ में जिसे आज 'भरुच' कहते हैं, बहुत बड़ा केन्द्र, जहां से बहुत बड़ा व्यापार होता था। यहां से भारत के लोग बाहर जाते, जो विपश्यना सीखे हुए हैं वे भी जाते, बाहर के लोगों को संदेश देते कि भाई एक विद्या हमारे देश में ऐसी है, जिससे मन के विकार दूर होते हैं, बड़ी शांति होती है। तो इन दोनों में से एक आदमी यवन था, यवन था माने ग्रीक का था। यानी, कैसे बाहर के लोग भी आ करके विद्या में पकते थे और पक करके इस लायक बन जाते थे कि अब वे लोगों को सिखायेंगे। तो केवल यहीं के नहीं, बाहर के लोगों को भी सिखायेंगे। यह विद्या पश्चिमी देशों में यहीं से गयी और आस-पास के देशों में भी यहीं से गयी।

इस इतिहास का अनुसंधान जब होगा, तब होगा, लेकिन एक बात जो प्रत्यक्ष में दिखाई देती है, वह यह कि अशोक का पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा श्रीलंका में यह विद्या लेकर गये। उन्होंने अच्छा काम किया। मुझे लगता है कि बहुत बड़ी संख्या में इस महाराष्ट्र प्रदेश के लोग भी वहां गये और बहुत बड़ा काम किया। इतना बड़ा काम किया कि महाराष्ट्र की संस्कृति समा गयी उनमें। मैं वहां जा करके दंग रह गया। जिन लोगों से बात करता हूं, मिलता हूं, उनका नाम पूछता हूं तो आधे से अधिक लोग अपना नाम बताते हैं-- सेनानाइके, रतवत्ते; तिलकरत्ने इत्यादि...। यह नाम के पीछे रतने "एकारांत" कहाँ से आये? महाराष्ट्र से आये भाई, यहां के लोग गये। यहां भी तो यही प्रथा है- "एकारांत" की, यानी, बहुत से नाम 'ए' से समाप्त होते हैं-- जैसे हजारे, फुले, मोरे, वाघमारे, सहस्रबुद्धे... इत्यादि, इत्यादि। अरे, यह इस बात का प्रमाण है कि यहां से इतनी बड़ी संख्या में लोग यह विद्या लेकर गये और समरस हो गये उस देश के लोगों के साथ। अन्यथा कैसे समरस होते? कोई राज करने तो गये नहीं वहाँ पर। कुछ लेने नहीं गये, देने गये। हमारे पास इतनी बड़ी विद्या है, करके तो देखो! भाई, करके तो देखो!

यह प्रदेश विश्व का बहुत बड़ा केन्द्र रहा। उतार-चढ़ाव आते रहते हैं। प्रकृति का नियम है- बसंत आता है, फिर पतझड़ आता है। दिन होता है, फिर रात होती है, फिर दिन होता है, फिर बसंत आता है..। तो भाई, यह खोयी हुई विद्या फिर आयी है इस देश में, और देश के समझदार-समझदार लोगों ने इसे स्वीकार करना शुरू किया है। intellectual लोगों ने इसे स्वीकार करना शुरू किया। देश के लिए यह कल्याण की बात हुई। समाज के लिए कल्याण की बात हुई।

विद्या बड़ी सरल, बड़ी वैज्ञानिक, बड़ी युक्ति-युक्त; अंधविश्वास को कहीं जगह नहीं। काम करे और परिणाम सामने आये। परिणाम सामने आये तब स्वीकारे, नहीं तो नहीं स्वीकारे। कोई अंध-विश्वास नहीं। लोग करके देखते हैं। मेहनत तो करनी पड़ती है। कोई यह समझे कि गुरु महाराज की कृपा से मैं बिल्कुल निर्विकार हो जाऊंगा, बिल्कुल निर्विकार हो जाऊंगी! अरे नहीं, ऐसा नहीं होता। किसी की कृपा काम नहीं आती। कृपा किसी की इतनी ही कि अगर वह उस रास्ते पर चला है तो बता देगा, भाई ऐसा रास्ता है, मैं चला हूं, मेरा लाभ हुआ है। चल, तू भी चल के देख। मैंने ऐसे अभ्यास किया, मुझे लाभ हुआ, तू भी करके देख! बस, बहुत बड़ी कृपा है, और इससे अधिक कृपा के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए। काम करना होगा।

मन को मैला बनाने की जिम्मेदारी किसकी? कौन जिम्मेदार? हमारे मन ने ऐसा गंदा स्वभाव बना लिया कि जब देखो तब व्याकुल रहता है, जब देखो तब व्याकुल रहता है। ऐसा स्वभाव किसने बनाया? किसी देवी-देवता ने, किसी ईश्वर-ब्रह्म ने, किसी संत-महापुरुष ने, किसी गुरु महाराज ने ? नहीं। अरे, क्यों बनाता कोई ऐसा स्वभाव? वे तो मन को निर्मल बनाने की बात सिखायेंगे। मैंने अपनी असावधानी से, अपने अज्ञान से, अपने मन को मैला करते-करते ऐसा स्वभाव बना लिया कि जब देखो तब मन को मैला ही रखूंगा, जब देखो तब व्याकुल ही रहूंगा। तो मैं जिम्मेदार हुआ न! अब इसको सुधारने की जिम्मेदारी भी मेरी है। मुझे ही सुधारना पड़ेगा। सुधारने के काम को भूल जायँ? हमारे कपड़े मैले हो जायँ तो अरे, मैले कपड़े कैसे पहनूं? तुरंत धोयेंगे, नया कपड़ा पहनेंगे न! मैला कपड़ा ही नहीं, चाहे हाथ मैले हो जायँ, शरीर मैला हो जाय तो हम नहायेंगे, हाथ धोयेंगे, साफ करेंगे न! मैल किसको अच्छा लगता है? और मन मैला रहे, उसको साफ करने की कोई बात नहीं करें?

क्या करें, यह तो होता ही है। उसने ऐसा कह दिया न, इसलिए गुस्सा आता ही है। उसने मेरा अपमान कर दिया न, इसलिए मन में द्वेष आया ही। अरे, तो उसने अपमान कर दिया या उसने तुम्हें कुछ बुरा-भला कह दिया तो तुम रोगी क्यों बने? रोगी तो वह है। जो आदमी तुमसे दुर्व्यवहार करता है वह बड़ा रोगी है। उससे बढ़कर दूसरा रोगी नहीं। मन में विकार जगाये बिना कोई किसी के साथ दुर्व्यवहार कैसे करेगा? अरे, बेचारे ने बड़ा विकार जगाया है रे! यह बड़ा दुखियारा है रे! बदले में मैं भी दुखियारा क्यों बन जाऊं? वह तो दुखियारा है ही, मैं भी दुखियारा क्यों बन जाऊं?

नासमझी की एक limit होती है। उस limit से बाहर चले गये। कोई हमारा दुश्मन है, हमको दुःखी बनाना चाहता है। इसलिए उसने गाली दी, अपमान किया। हम कहते हैं तू हमें दुःखी बनाना चाहता है न, खुद ही दुःखी रहूंगा मैं। तू खुश रह! हम अपने आप को और दुःखी बनाने लगे न, उसकी गाली को स्वीकार करके।

समझ ही नहीं पा रहे कि यह कर क्या रहे हैं? क्यों नहीं समझ पा रहे, क्योंकि अपने भीतर की सच्चाई देखने की विद्या ही खो बैठे। जब देखो, मन कुछ सोचता है तो बाहर की बातों को ही। उसने ऐसा कह दिया, उसने ऐसा कर दिया, यह बात ऐसी हो गयी, वह वैसी हो गयी। बाहर की जो गलत बातें हैं, वे ठीक नहीं हैं तो उनको अवश्य सुधारना चाहिए। पर अपने मानस को बिगाड़ कर कैसे सुधारोगे भाई? अपने मानस को बिना बिगाड़े, हम बाहर की बातों को सुधारेंगे तो जीना आ गया। बस, विपश्यना यही सिखाती है कि बाहर कैसी ही बात क्यों ना हुई हो, कितनी ही अनचाही बात क्यों न हुई हो, हम झट अपने भीतर देखेंगे, मैं व्याकुल तो नहीं हुआ न! मैंने अपनी समता तो नहीं खोयी! मैंने अपना संतुलन तो नहीं खोया! अब जो करना है सो करेंगे, और जो करेंगे वह अच्छा ही होगा, उसका परिणाम अच्छा ही होगा, क्योंकि हम स्वस्थ चित्त से काम कर रहे हैं।

स्वस्थ क्या होता है? जो स्वयं में स्थित हो गया, वह स्वस्थ हो गया। अपने आप में स्थित हो गया। तो अपने आपको जाने बिना अपने में स्थित कैसे होंगे? कल्पना करके थोड़े ही होंगे? तो अपने आप को जानना ही विपश्यना है। अपने बारे में जो सच्चाई है उसे अनुभूतियों के स्तर पर जानना है। बस, समझो दुःखों से दूर होने लगे। अपने आप दूर होने लगे। ...

(क्रमशः ...)

मंगल-मृत्यु

१. श्रीलंका के वरिष्ठ सहायक आचार्य और धम्मकूट केंद्र के केंद्र-आचार्य श्री एल. एच. चंद्रसेना गत ३० मई को शांतिपूर्वक दिवंगत हुए और उनकी इच्छानुसार उनका पार्थिव शरीर पैराडेनिया विश्वविद्यालय को शोधार्थ दान दे दिया गया। वे २००२ में स.आ. नियुक्त हुए और २००६ में वरिष्ठ स. आ. और फिर केंद्र-आचार्य बने और जीवन की अंतिम सांस तक धर्मसेवा करते रहे। उनका खूब मंगल हो!

२. शेलबर्न फाल्स, मैसाचुसेट्स, अमेरिका की आचार्या ७४ वर्षीया कु. लाली प्रॉट का एक लंबी बीमारी के बाद २० जून को निधन हो गया। उस समय उनके सभी प्रियजन वहां बैठ कर साधनारत थे। कु. लाली ने अपना पहला शिविर १९८२ में पूज्य गुरुजी के सान्निध्य में किया था और शीघ्र ही उन्होंने निश्चय कर लिया कि अब यही उनके लिए करणीय है। वे कई वर्षों तक मैसाचुसेट्स केंद्र **'धम्मधरा'** में सेवारत रहीं और पूरे उत्तरी अमेरिका की सेवा करती रहीं। उनके ही अथक प्रयास से मध्य अटलांटिक विपश्यना संघ की स्थापना हुई और **'धम्म डेलावर'** विपश्यना केंद्र की स्थापना हुई। आज यह विशाल केंद्र के रूप में उन्हीं के प्रयास से सफल है।

लाली एक कलाकार भी थीं। भगवान बुद्ध की जीवनी पर बनाई हुई उनकी छवियां (पेंटिंग्स) देख कर लोग बहुत प्रभावित होते हैं। वे सुखी, शांत और मुक्त हों।

Registered No. NSK/235/2015-2017

WPP Postal License No. AR/Techno/WPP-05/2015-2017

अतिरिक्त उत्तरदायित्त्व

१. श्री नोरबू शेरिंग भूटिया, धम्मसिनेरु, सिक्किम के केंद्र आचार्य की सहायता
2. Mr. Charles Lionel Kasturiratne Tennakoon, To serve as Centre Teacher for Dhamma Dharani, Sri Lanka.
3. Ven. Anuradhapura Dhammika, To assist the centre teacher of Dhamma Anuradha, Sri Lanka
4. Mr. Pemasiri Amarasinghe, To serve as Centre Teacher for Dhamma Kuta, Sri Lanka
5. Mr. Ole Bosch, To assist Centre Teacher, Dhamma Pataka, South Afrika.
6. Mr. Brian Wagner, To assist Centre Teacher, Dhamma Pataka, South Afrika.

नये उत्तरदायित्त्व
वरिष्ठ सहायक आचार्य

1. Mr. Denekew Tekle, Canada
2. Mr. Mr. Charles Lionel Kasturiratne Tennakoon, Sri Lanka

नव नियुक्तियां
सहायक आचार्य

१. श्री उत्तमराव पाटिल, धुळे
२. श्री अभिमन्यु पाटिल, धुळे
३. श्रीमती कांता इंगळे, बुलढाना
४. श्रीमती लता मुंडाडे, जलगाव
५. श्री दीपक भट्टाचार्य, कोलकाता
६. श्रीमती काकोली भट्टाचार्य, कोलकाता
७. कु. निर्मला सिंह, गुड़गांव
८. कु. संगीता सिंह, नोएडा
9. Ven. Anuradhapura Dhammika, Sri Lanka
10. Ms. Panorea Percival, South Africa

बालशिविर शिक्षक

१. सौ. माधवी संघवी, राजकोट
२. श्री राजु चन्द्र दाहाल, नेपाल
३. सौ. रोमिला कोइराला, नेपाल
४. सौ. टिका दाहाल, नेपाल
५. श्री उदय बिष्ट, नेपाल
६. श्री ढुन्डीराज शर्मा, नेपाल
७. श्री टोपेन्द्र केसी, नेपाल
८. श्री टिकाराम केसी, नेपाल
९. सौ. दीपा शर्मा, नेपाल
10 Mr. U. O. Kay, Myanmar
11. Ms. Mon Mon Swe, Myanmar
12. Ms. Evrim Asutey, UK
13. Ms Zalina Lyutova, Russia

पगोडा पर रात भर रोशनी का महत्त्व

पूज्य गुरुजी बार-बार कहा करते थे कि किसी धातु-पगोडा पर रात भर रोशनी रहने का अपना विशेष महत्त्व है। इससे वातावरण धर्म एवं मैत्री-तरंगों से भरपूर रहता है। सगे-संबंधियों की याद में ग्लोबल पगोडा पर रोशनी-दान के लिए प्रति रात्रि रु. ५०००/- निर्धारित किये गये हैं। अधिक जानकारी के लिए Mr. Derik Pegado 022-33747512, Email: audits@globalpagoda.org or R.K. Agarwal, Mo. 7506251844, Email: rkagarwal.vri@globalpagoda.org से संपर्क करें।

धम्मभुबनेश्वर एवं धम्मअरुण में पहले शिविर संपन्न

१ से १२ जून तक भुबनेश्वर के नये केंद्र में १७ पुरुष और १२ महिलाओं का शिविर सफलतापूर्वक संपन्न हुआ। यहां अभी तक बिजली नहीं पहुँची है। बेहद गर्मी और ऊमस के बीच शिविर की सफलता बेमिशाल है। कंतवाडा गांव के प्रमुख व्यक्तियों को भी बुलाया गया। वे लघु आनापान करके बहुत प्रभावित और लाभान्वित हुए।

२० से ३१ अप्रेल तक धम्मअरुण का शिविर आरंभ होते ही भारी बारिस और तूफान में घिर गया। शिविर के अंत तक वर्षा और ओले गिरते रहे। भारी कठिनाई में भी धर्म के प्रताप और पूज्य गुरुदेव की मैत्री से हम सब ने धैर्य बनाये रखा और शिविर सफल हुआ।

वर्ष २०१६ के सभी एक-दिवसीय महाशिविर

रविवार, २ अक्टूबर - पू. गुरुजी श्री गोयन्काजी के प्रति कृतज्ञता (*२९ सितंबर*) एवं शरद पूर्णिमा -- के उपलक्ष्य में **'ग्लोबल विपश्यना पगोडा'** में एक दिवसीय महाशिविर होगा। **शिविर-समयः** प्रातः **11** बजे से अपराह्न **4** बजे तक। 3 बजे के प्रवचन में बिना साधना किये लोग भी बैठ सकते हैं। बुकिंग के लिए कृपया निम्न फोन नंबरों या ईमेल से शीघ्र संपर्क करें। कृपया बिना बुकिंग कराये न आयें और **समग्गानं तपो सुखो**- सामूहिक तप-सुख का लाभ उठाएं। **संपर्कः** 022-28451170 022-337475-01/43/44- Extn. 9, (**फोन बुकिंग : 11** से **5** बजे तक, प्रतिदिन)
Online Regn.: www.oneday.globalpagoda.org

दोहे धर्म के

छूटे माया मोह की, प्रज्ञा जगे प्रभूत।
टूटे जकड़न राग की, मन हो पावन पूत॥

राग द्वेष की मोह की, काल अंधेरी रात।
प्रज्ञा का सूरज उगे, मंगल होय प्रभात॥

प्रतिपल जागृत ही रहा, राग द्वेष अभिमान।
अब प्रतिपल प्रज्ञा जगे, जगे अनित्य का ज्ञान॥

जब मानस में धर्म का, जागे अंतर-बोध।
कर्म-कांड सब छोड़ कर, कर ले चित्त विशोध॥

केमिटो टेक्नोलॉजीज (प्रा०) लिमिटेड
८, मोहता भवन, ई-मोजेस रोड, वरली, मुंबई- 400 018
फोनः 2493 8893, फैक्सः 2493 6166
Email: arun@chemito.net
की मंगल कामनाओं सहित

दूहा धरम रा

निसदिन मन मैलो करयो, राग द्वेस अभिमान।
इब धो धो कर दूर कर, कर अपणो कल्याण॥

धरम न अपणो हो सकै, बोल्यां ऊंचा बोल।
जो तू चावै धरम सुख, मन री गांठ्यां खोल॥

नदिया जळ स्यूं बावळा! चित्त धुल्यो ना जाय।
चित धोवण नै साधना, दीनी बुद्ध बताय॥

बिणज बिणज रै बाणिया, बिणज धरम री हाट।
मैत्री करुणा धारलै, छोड़ द्वेस रा बाट॥

मोरया ट्रेडिंग कंपनी
सर्वो स्टॉकिस्ट - इंडियन ऑईल, ७४, सुरेशदादा जैन शॉपिंग कॉम्प्लेक्स, एन.एच.६, अजिंठा चौक, जलगांव - ४२५ ००३, फोन. नं. ०२५७-२२१०३७२, २२१२८७७
मोबा.०९४२३९८७३०१, Email: morolium_jal@yahoo.co.in
की मंगल कामनाओं सहित

'विपश्यना विशोधन विन्यास' के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादकः राम प्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी- 422 403, दूरभाष : (02553) 244086, 244076.
मुद्रण स्थान : अपोलो प्रिंटिंग प्रेस, जी-२५९, सीकॉफ लिमिटेड, ६९ एम. आय. डी. सी, सातपुर, नाशिक-422 007. **बुद्धवर्ष 2560, आषाढ़ पूर्णिमा, 19 जुलाई, 2016**

वार्षिक शुल्क रु. **30/-,** US $ 10, **आजीवन शुल्क** रु. **500/-,** US $ 100. **'विपश्यना' रजि. नं. 19156/71. Registered No. NSK/235/2015-2017**

WPP Postal Licence No. AR/Techno/WPP-05/2015-2017
Posting day- **Purnima of Every Month,** Posted at **Igatpuri-422 403,** Dist. Nashik (M.S.)

DATE OF PRINTING: 8 July, 2016, DATE OF PUBLICATION: 19 July, 2016

If not delivered please return to:-

विपश्यन विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी - 422 403
जिला-नाशिक, महाराष्ट्र, भारत
फोन : (02553) 244076, 244086, 243712,
243238. **फैक्स :** (02553) 244176
Email: info@giri.dhamma.org
Website: www.vridhamma.org